दूसरी नज़र

■ पी चिदंबरम

अर्थशास्त्रियों के बिना अर्थव्यवस्था

हर व्यक्ति अर्थशस्त्री होता है- घरेलू चीजों का बजट तैयार करने वाली गृहिणी से लेकर गाय का दूध बेचने वाले ग्वाले तक और भवन निर्माण में इस्तेमाल होने वाली छोटी-छोटी चीजें बनाने वाले छोटे उद्यमी से लेकर बड़े भवन निर्माता तक, जो बड़े-बड़े अपार्टमेंट बना कर बेचता है। ये सभी चाहे मजबूरीवश हो या फिर अपने कारोबार के क्षेत्र विशेष से संबंधित ठेकों, कर आदि से जुड़े नियम-कानूनों के पालन की बाध्यता के चलते हो, कारोबार की सुगमता, अपने ग्राहकों/ समकक्षी कारोबारियों से संबंध बेहतर बनाए रखने के लिए हो, आर्थिक पहलुओं का ध्यान रखते ही हैं। ये सभी जानकार होते हैं, दरअसल ये सभी तथ्यों से भलीभांति अवगत होते हैं। सबसे बेहतर जाना-पहचाना तथ्य है पैसा। हमारी कहानी में वही नायक होता है, जो आमतौर पर जाने-पहचाने तथ्यों के आधार पर सटीक निर्णय करता है।

मगर नायक तब गलत साबित होता है, जब वह अज्ञात तथ्यों की तरफ मुड़ जाता है- दोनों, ज्ञात अज्ञात और अज्ञात अज्ञात। फिर एक समय के बाद नायक अज्ञात का विशेषज्ञ हो जाता है।

वह नायक किसी राज्य का चुना हुआ मुख्यमंत्री भी हो सकता है, और हो सकता है उसने अपने राज्य में बहुत प्रभावशाली ढंग से शासन चलाया हो। लंबे समय तक नायक ने जाने-पहचाने ज्ञात- पैसा- और अन्य सारे ज्ञात और अज्ञात को संचालित किया हो। पर समस्या तब पैदा होती है जब नायक ज्ञात और अज्ञात से अलग दिशा में सफर तय करना शुरू करता है। उस समस्या को कहते हैं- बाजार। और जब बाजार में एक-दूसरे से असंबद्ध करोड़ों लोग हों, और वे भय और अनिश्चितता के वातावरण में अपने-अपने निजी फैसले करते हों, वे अलग-अलग उद्देश्यों से प्रेरित हों, तब बाजार सामान्य समस्या नहीं, बल्कि बहुत बड़ी समस्या बन जाता है।

अगर चूहा और आदमी दोनों को ध्यान में रख एक उत्कृष्ट योजना बनाई जाए, तो वह बाजार में जाकर विफल हो जाएगी। आकार और पैमाना मायने रखता है। परीक्षा पास करने के लिए संतुलित बजट तैयार करने में वैसी चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ता, जैसी चुनौतियां सरकार के लिए बजट तैयार करने में पेश आती हैं। इसी तरह एक राज्य चलाने में उन बहुत सारी चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ता, जो देश चलाने में सामने आती हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी करीब बारह साल तक गुजरात के मुख्यमंत्री रहे। उनकी वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एमए की डिग्री हासिल की है। उन दोनों के बीच एक समानता है- ऐसा वे सोचते हैं- और उन्हें सोचना भी क्यों नहीं चाहिए- कि वे दोनों कुशल अर्थशास्त्री हैं, वे भारतीय अर्थव्यवस्था को संचालित करने में सक्षम हैं।

पर काश, वे दोनों भारतीय अर्थव्यवस्था की धीमी गिरावट और फिर आसन्न विध्वंस की जिम्मेदारी ले पाते! पिछली छह तिमाहियों के जो आधिकारिक आंकड़े उपलब्ध हैं, उनमें भारत की जीडीपी विकास दर क्रमशः 8.0, 7.0. 6.6, 5.0 और 4.5 है। हर मद से, जैसा कि सुना जा रहा है, प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री चिंतित हैं, मगर वे इसे जाहिर नहीं कर रहे- अभी तक तो ऐसा ही है। प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री की मेहनत में एकदम अंतर है : निर्णय प्रधानमंत्री कार्यालय लेता है और उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी वित्त मंत्रालय की होती है। और दोनों के कार्यालयों में परस्पर संदेह और दोषारोपण का खेल चलता है।

अब कहानी के दो मुख्य नायक निरीह प्याज की कीमतों को नियंत्रित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिसे लेकर गरीब और मध्यवर्ग में हाहाकार है। क्या उन बहुत सारी चीजों के बीच 'प्याज' कहीं गलत भी हो सकता है, जिनका हम सामना कर रहे हैं?

इसके अलावा, राष्ट्रीय सांख्यिकी सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) के अनुसार घरेलू खपत घटी है। लोगों को ग्रामीण मजदूरी नहीं मिल पा रही है। उत्पादन की कीमतें घटी हैं, खासकर किसानों के उत्पादन की। दिहाड़ी मजदूरों को महीने में पंद्रह दिन से अधिक काम नहीं मिल पा रहा है। मनरेगा में काम की मांग बढ़ी है। टिकाऊ और गैर-टिकाऊ दोनों तरह की उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में कमी आई है। थोक मूल्य सूचकांक बढ़ कर 1.92 प्रतिशत तक पहुंच गया है और खुदरा उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 4.62 प्रतिशत पर पहुंच गया है। ताप उर्जा संयंत्रों यानी थर्मल प्लांट का उत्पादन 49 प्रतिशत पर पहुंच गया है। इसका अर्थ है कि बिजली की खपत घटने की वजह से कुल तापीय ऊर्जा क्षमता का आधा हिस्सा बंद हो गया है।

फिर भी सरकार सोचती है कि आसन्न विध्वंसक संकट दूर हो जाएगा। दरअसल, यह सब सरकार अपने अतीत के जिदवश किए गए अतार्किक फैसलों को अविवेकपूर्ण ढंग से छिपाने की मंशा से कर रही है, जैसे नोटबंदी, त्रुटिपूर्ण जीएसटी, कर आतंकवाद, नियामक अतिवाद, प्रधानमंत्री कार्यालय में संरक्षणवाद और निर्णयों का केंद्रीकरण। नोटबंदी के जरिए 8 नवंबर, 2016 को मानव निर्मित तबाही आई थी। तमाम चेतावनियों के बावजूद सरकार ने स्टाक लेना बंद नहीं किया था। 'द इकोनॉमिस्ट' ने सरकार को अर्थव्यवस्था का 'अक्षम प्रबंधक' कहा था। जब दूसरे विकल्प नहीं बचे, तो मंत्रियों ने झूठ बोलने और प्रपंच का सहारा लेना शुरू कर दिया था।

सरकार ने स्वीकार किया है कि अर्थव्यवस्था की रफ्तार धीमी है, मगर उसने किसी प्रकार की ऐसी 'संरचनात्मक' गड़बड़ी से इनकार किया है, जिसे दुरुस्त करने की जरूरत है। सरकार ने इसे 'चक्रीय' समस्या माना है। उसके अनुसार यह बहुत छोटी सी 'मौसमी' समस्या है, जिसका वह आकलन नहीं कर पाई।

भारत की अर्थव्यवस्था बिना किसी अर्थशास्त्री की सलाह और सहयोग के चल रही है। आखिरी आदमी थे डॉ. अरविंद सुब्रमण्यन। कल्पना कीजिए कि बिना किसी प्रोफेसर के कोई शोध पाठ्यक्रम चलाया जाए या फिर बिना किसी डॉक्टर के कोई गंभीर आपरेशन किया जाए, तो क्या होगा! बिना किसी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री के- और अक्षम प्रबंधकों की मदद से- अर्थव्यवस्था को चलाना भी कुछ वैसा ही है।

प्रतिशत में

	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20
कृषि विकास दर	6.3	5.0	2.9	2.1
औद्योगिक उत्पादन	4.6	4.4	3.9	2.4
मुख्य क्षेत्र विकास	4.8	4.3	4.4	0.2
एमएसएमई ऋण वृद्धि	0.9	-0.4	2.3	2.7
निर्माण	-1.2	1.7	-1.4	0.7
अंतिम निजी उपभोग खर्च	56.1	56.3	56.9	55.7
बेरोजगारी	9.65	4.03	5.14	7.03

व्यवस्था से हताश लोग

सनसनीखेज वारदात करने वालों का सनसनीखेज खात्मा हो चुका है। हैदराबाद के निकट एक मासूम बेटी का जिस तरह से चार हैवानों ने बलात्कार किया था और फिर उसे जिस बेरहमी से फूंक दिया था, उसकी सही सजा 'पुलिस एनकाउंटर' में दी गई सख्त मौत ही है। दरिंदों का अंत तुरंत और दया शून्य होना चाहिए। पुलिस के बयान के अनुसार कथित बलात्कारियों ने हिरासत से फरार होने की कोशिश की थी और जब अनुरक्षण दल ने इसे विफल करने का प्रयास किया, तब इन चारों ने उन पर पत्थर बरसाए और गोली भी चलाई थी। जवाबी फायर में पुलिस इनको ढेर करने में कामयाब रही।

खबर के 'ब्रेकिंग' होते ही सोशल मीडिया पर प्रतिक्रियाएं बरसने लगी थीं। ज्यादातर लोगों का कहना था कि जो भी हुआ, अच्छा हुआ। इन वहशी युवकों को अपने कुकृत्य की उचित सजा मिल गई। यों भी 'निर्भया कांड' के बाद यह मांग उठती रही है कि कानून में बलात्कारियों के लिए सजा-ए-मौत निश्चित होनी चाहिए और आरोप सिद्ध होने पर उन्हें फांसी पर फौरन लटका देना चाहिए। कोर्ट-कचहरी की लंबी कार्य प्रणाली को भी बलात्कार जैसे संगीन जुर्म के संदर्भ में त्वरित निपटान करने की जरूरत पर भी जोर दिया गया था।

तीरंदाज

■ अश्विनी भटनागर

असल में जो लोग मुठभेड़ में आरोपित बलात्कारियों की मौत से खुश हैं, वे सारी व्यवस्था और माहौल से अपने मूलचूल तक बेहद निराश हैं। वे देख रहे हैं कि एक तरफ तो व्यवस्था गूंगी गुड़िया बन गई है, जिससे हर तरह का तत्त्व तामसिक खिलवाड़ कर रहा है, तो दूसरी तरफ कुछ तबकों ने व्यवस्था के हलकों पर अनधिकार अधिग्रहण कर लिया है।

दशकों तक चलने वाली कानूनी कार्यवाही की वजह से ज्यादातर मामलों में आरोपी बच निकलते हैं और अगर कहीं किसी को सजा हो भी जाती है, तो पीड़ित महिला के लिए उसका कोई मतलब नहीं रह जाता है। न्याय तुरंत होना जरूरी है और ऐसा होना चाहिए, जिससे घृणित प्रवृत्ति वालों को उचित सबक मिल सके।

इसमें कोई शक नहीं है कि चाहे वह पुलिस हो या न्यायपालिका, पीड़ित को समयबद्ध कार्रवाई की अपेक्षा होना लाजमी है। पर जैसा हमने पिछले सत्तर सालों के दौरान देखा है कि आरोपित अपराधी न्याय व्यवस्था की प्रक्रिया में निहित कमियों का फायदा उठा कर कानून के शिकंजे से बाहर रहते हैं और शिकायतकर्ता का उत्पीड़न जारी रखते हैं। उन्नाव जिले में बलात्कार की शिकार एक बच्ची को बलात्कारियों ने हाल ही में जिंदा जला दिया। मरने से पहले उसने इन घिनौने लोगों की पहचान तो बता दी थी और अब उन पर कार्रवाई भी हो, पर इस लड़की की बेहद दर्दनाक मौत फिर एक बार बताती है कि हमारी व्यवस्था कितनी लचर और संवेदनहीन है।

इसके साथ जब लगातार सूचनाएं मिलती हैं कि किस तरह से जघन्य अपराधियों को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है और वे किस सीनाजोरी से पीड़ित और उसके परिवार को धमका रहे हैं, तो हमारी और आपकी कानून और न्याय-व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था से भी आस्था समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में जन-मानस का आंदोलित होकर फौरन से पेश्तर कबीलाई इंसाफ की मांग करना स्वाभाविक है। खून का बदला खून और लगे हाथ मामले को उत्तेजित हालात के हिसाब से निपटा देने की प्रवृत्ति उग्र हो गई है।

अगर आज के हालत पर गौर करें और पीछे हुए कई अलग-अलग संदर्भों के घटनाक्रम पर निगाह दौड़ाएं तो साफ हो जाता है कि एक संदर्भ दूसरे को प्रभावित ही नहीं कर रहा है, बल्कि अपनी लपेट में भी ले रहा है। उदाहरण के लिए महिला सुरक्षा के नाम पर 'एंटी रोमियो स्क्वाड' को राजनीतिक स्तर पर मंजूरी दी गई थी। महिला संरक्षण बहुत अच्छा विचार है, पर 'एंटी रोमियो स्क्वाड' के नाम पर हर तरह के तत्त्व सक्रिय हो गए थे। इससे स्थापित व्यवस्था, यानी पुलिस द्वारा संगठित कानून-व्यवस्था हाशिये पर कर दी गई थी। कोई भी उचक्का 'स्क्वाड' का बिल्ला लगा कर कानून का डंडा चलाने लगा था।

एक वर्ग ने इस तरह की पहल का स्वागत किया था, पर वह भूल गया था कि इसके दूरगामी परिणाम भी हो सकते हैं। उचक्के धीरे-धीरे अपनी भीड़ बनाने में कामयाब हो गए और महिला सुरक्षा का मुद्दा पहले गौ-सुरक्षा और फिर भीड़ द्वारा हत्या में तब्दील हो गया था। धर्म संरक्षण के नाम पर सड़क पर इंसाफ होने लगा था, जिससे कानून-व्यवस्था और लाचार होती गई। पुलिस वालों का कहना था कि वे आखिर करें भी तो क्या करें! ऊपर से आदेश है कि भीड़ को मनमानी करने दो।

हैदराबाद, उन्नाव और इनसे पहले 'निर्भया एक' और 'निर्भया दो' जैसे कई घिनौने कांड हो चुके हैं। निर्भया के बलात्कारियों को कई वर्ष बीत जाने के बाद भी, उचित सजा नहीं मिली है।

यों हैदराबाद एनकाउंटर के बाद एक वर्ग का हर्ष वास्तव में कानून-व्यवस्था पर उनके रोष को जाहिर करता है। वे वाजिब न्याय के न होने से इतने हताश हो चुके हैं कि सड़क पर गोली कांड हो जाना ही उनको सही विकल्प लगता है। उनके जेहन में वह छवि भी कांटे की तरह से खटक रही है, जिसमें उन्नाव की बलात्कार पीड़िता और उसके परिवार का उत्पीड़न शिकायत करने के बाद बढ़ गया था और आखिर एक ट्रक उसे रौंद कर चला गया था, जिसमें वह किसी तरह जिंदा बच सकी। उसके परिवार के कुछ लोग मारे गए। साथ में उन्हें वह दृश्य भी याद है, जिसमें एक वरिष्ठ सांसद अपनी चुनाव में जीत का धन्यवाद प्रस्ताव लेकर बलात्कार आरोपी से मिलने जेल पहुंच गए थे।

असल में जो लोग मुठभेड़ में आरोपित बलात्कारियों की मौत से खुश हैं, वे सारी व्यवस्था और माहौल से अपने मूलचूल तक बेहद निराश हैं। वे देख रहे हैं कि एक तरफ तो व्यवस्था गूंगी गुड़िया बन गई है, जिससे हर तरह का तत्त्व तामसिक खिलवाड़ कर रहा है तो दूसरी तरफ कुछ तबकों ने व्यवस्था के हलकों पर अनधिकार अधिग्रहण कर लिया है। ऐसा करने के लिए माहौल रचा गया था, कहना मुश्किल है, पर छोटी-छोटी भूलों ने आज दैत्यकायी भूल रूपी माहौल की शक्ल ले ली है।

दूसरी तरफ जो लोग हैदराबाद किस्म के इंसाफ पर किंतु-परंतु कर रहे हैं, वे भी उतने ही हताश हैं, जितना कि खुश होने वाले हैं। कुल मिला कर नागरिक अपने को बेबस और लाचार महसूस करने लगे हैं। उनको व्यवस्था से कोई आशा नहीं रह गई है। हैदराबाद जैसे तुरंत न्याय के जोखिम को जानते हुए भी वे कहीं न कहीं उसका समर्थन कर रहे हैं। वास्तव में गलन आत्मा तक का ह्रास कर चुकी है। हम जंगल में नहीं रहते हैं, फिर भी जंगल राज के हामी होने के लिए मजबूर होते जा रहे है।

मंशा पर सवाल

पिछले हफ्ते भारत के गृहमंत्री ने एक बार फिर धमकाने वाले अंदाज और अपने खास गुजराती लहजे में कहा कि 'चुन-चुन कर हम उनको निकालेंगे'। झारखंड में चुनावी भाषण दे रहे थे अमित शाह और उनका इशारा उन मुसलमानों की तरफ था, जो उनकी राय में बिना इस देश की नागरिकता के 'दीमक की तरह' फैले हुए हैं। अच्छा लगा मुझे जब उनके श्रोताओं की तरफ से जरा भी प्रशंसा नहीं दिखी : न तालियां, न नारे। झारखंड में ये 'दीमक' शायद कम दिखते हैं। लेकिन यह भी हो सकता है कि नागरिकता कानून में जो संशोधन मोदी सरकार अगले हफ्ते संसद में पारित कराना चाहती है, उसमें आम भारतीय को कोई खास रुचि नहीं है।

अपनी तरफ से स्पष्ट करना चाहती हूं कि मुझे जरूरत से ज्यादा रुचि है इस संशोधन में। इसलिए कि मुझे देश के लिए खतरा दिखता है, इसमें लाभ नहीं। जब किसी कानून में साफ शब्दों में लिखा जाता है कि सिर्फ मुसलिम शरणार्थियों को भारत में पनाह नहीं मिल सकती और सिख, हिंदू, जैन, बौद्ध, इसाई शरणार्थियों के लिए न सिर्फ पनाह मिलने का प्रावधान होगा, उनको नागरिकता भी मिल सकती है, तो मुसलमानों के लिए क्या संदेश दे रही है सरकार? क्या संदेश यह नहीं होगा कि मुसलमानों का दर्जा अलग हो गया है 'नए भारत' में?

भारत में इंडोनेशिया के बाद दुनिया की सबसे बड़ी मुसलिम आबादी है, सो अगर उनको इतनी तकलीफ दी जाती है भविष्य में कि उनके लिए देश छोड़ कर जाने की नौबत तक आ सकती है, तो जाहिर है कि देश एक बार फिर टूट सकता है। पाकिस्तान मेरा आना-जाना रहा है पिछले चालीस सालों से। वहां लंबे अरसे तक पत्रकारिता की है, सो यकीन मानिए, जब मैं कहती हूं कि उस देश के जरनैलों का पुराना सपना है कि भारत फिर से टूटेगा एक दिन और उसका कुछ हिस्सा पाकिस्तान में शामिल हो जाएगा ताकि बराबरी हो जाए दोनों देशों के बीच जमीन पर। जब ऐसे कानून बनाए जाएंगे, जिनमें मुसलमानों के लिए अलग दर्जा होगा, तो क्या इस सपने को साकार करने में भारत के शासक मदद नहीं कर रहे हैं पाकिस्तान का?

इस संशोधन से शिकायतें मुझे और भी हैं। एक तो इसकी जरूरत नहीं दिखती है मुझे। जरूरत तब होती, अगर अमेरिका की दक्षिण सीमा की तरह हमारी किसी सीमा पर शरणार्थियों की कतारें लगी होतीं। यूरोप में भी कुछ साल पहले लाखों की तादाद में सीरिया से शरणार्थी पहुंचे थे इतनी बड़ी संख्या में कि उनको रोकना मुश्किल हो गया था। हमारी किसी भी सीमा पर ऐसा हाल नहीं है। एक समय था जब बांग्लादेश से लाखों लोग आए थे और जिनके आने से असम जैसे राज्य में आबादी की शक्ल तक बदल गई थी। ये लोग दिल्ली में भी आए थे इतनी बड़ी संख्या में कि निजामुद्दीन औलिया की मजार के आसपास इनके कैंप लगे थे। आज दिल्ली में दिखते तक नहीं हैं। ऊपर से बांग्लादेश का आर्थिक हाल इतना बेहतर हो गया है कि कई सामाजिक और आर्थिक मापदंड दिखाते हैं कि भारत से आगे निकल गया है। सो, कहां हैं ये 'दीमक' जो गृहमंत्री को इतनी तकलीफ दे रहे हैं?

हमारी उत्तरी सीमा से कुछ अफगान जरूर आए हैं, जो तालिबान सरकर के समय आए थे, उसकी तशद्दुद से भाग कर। इनमें से कुछ थोड़े बहुत हैं, जो दिल्ली में बस गए हैं। रही बात पाकिस्तान की, तो वहां से मुसलिम सैलानी भी आजकल नहीं आते हैं, क्योंकि माहौल दोनों देशों के बीच तनाव भरा है। आते हैं अवैध तरीकों से सिर्फ जिहादी आतंकवाद फैलाने, जिनको काफी हद तक सीमा पर ही खत्म कर दिया जाता है। इन देशों से जितने भी हिंदू और सिख आए हैं भाग कर उनको वैसे भी पनाह मिल जाती है, सो इस संशोधन की जरूरत ही क्या है?

गृहमंत्री ने ऐलान कर दिया है कि देश भर में अब नागरिकता स्थापित करने के लिए मुहिम चलेगी, जैसे असम में चलाई गई थी। असम में कोई सोलह सौ करोड़ रुपए खर्चे जाने के बाद मालूम हुआ कि उन्नीस लाख लोग हैं, जिनके पास नागरिकता के सबूत नहीं हैं। इनमें आधे तो बंगाली हिंदू हैं। जिन मुसलमानों को पकड़ा गया है, उनको खास जेलों में रखा गया है, जब तक उनको वापस बांग्लादेश न भेजा जा सके। समस्या यह है कि बांग्लादेश उनको वापस लेने को तैयार नहीं है। सो, देश भर में अगर हम खोज कर निकालने की कोशिश करेंगे मुसलिम शरणार्थियों को तो अनुमान लगाइए कि जनता का कितना पैसा लगेगा इस मुहिम पर। अनुमान यह भी लगाइए कि अगर इसी में उलझी रहेगी मोदी सरकर, तो कहां से पूरे होंगे वे परिवर्तन और विकास के वादे।

निजी तौर पर मुझे इस संशोधन विधेयक से सबसे बड़ी शिकायत यह है कि इस कानून के तहत छोटे-मोटे सरकारी अफसरों को अधिकार मिलेगा तय करने का कि हममें से भारत के असली नागरिक कौन हैं और कौन नहीं हैं। और जैसे अपने देश में अक्सर होता है, इसका परिणाम यह होगा कि भ्रष्टाचार आसमान छूने लगेगा, क्योंकि थोड़ी-सी रिश्वत देकर कोई भी नागरिक बन जाएगा भारत का। तकलीफ उन गरीब मुसलमानों को ही होगी, जिनके पास रिश्वत देने की क्षमता नहीं है। अक्सर इतने गरीब हैं इस देश के मुसलमान कि उनके छोटे से घरों में कागजात रखने की भी जगह नहीं होती है, अगर कागजात हों भी अपनी नागरिकता साबित करने के। जब ऐसे लोगों को बंद कर दिया जाएगा खास जेलों में, तो ऐसी अशांति और अराजकता फैलेगी मुसलमानों में कि जिहादी संस्थाओं का काम आसान हो जाएगा। इसलिए मुझे इस कानून से खतरा ही दिखता है देश के लिए, लाभ एक भी नहीं।

वक़्त की नब्ज़

■ तवलीन सिंह

जब किसी कानून में साफ शब्दों में लिखा जाता है कि सिर्फ मुसलिम शरणार्थियों को भारत में पनाह नहीं मिल सकती और सिख, हिंदू, जैन, बौद्ध, इसाई शरणार्थियों के लिए न सिर्फ पनाह मिलने का प्रावधान होगा, उनको नागरिकता भी मिल सकती है, तो मुसलमानों के लिए क्या संदेश दे रही है सरकार?

सिंघम न्याय

एक चैनल का एक एंकर एक हाथ में प्याज, एक में गनमाइक लेकर खान मार्केट में खड़े-खड़े पूछता फिरता है प्याज की महंगाई का राज!

उधर दूसरे चैनल में प्याज के बढ़ती कीमतों को देख-देख कर दूसरे एंकर भैया जी भाजपा के प्रवक्ता के प्याज का तुलनात्मक अध्ययन करने की ढिठाई पर सात्विक क्रोध से भर कर बरस पड़ते हैं। प्रवक्ता कहने लगता है कि सन 2013 में यूपीए के शासन में भी तो प्याज के दाम बढ़े थे। यानी कि अब बढ़े हैं तो क्यों रोते हो! इस बेशर्मी को देख भैया जी धिक्कारते हुए चीखने लगते हैं कि आप लोग संसद में 'हम प्याज नहीं खाते' कह कर लोगों का अपमान करते हो और यहां बहस में आकर प्याज चर्चा का मजाक बनाते हो! जरा देखो तो : मदुरै में प्याज का दाम है एक सौ अस्सी रुपए किलो और चेन्नई में है डेढ़ सौ रुपए किलो।...

मगर भाजपा में प्रातिभों की कमी कहां? पार्टी को रक्षात्मक देख एक महामहिम जी को तुरत अपने बाह्मणत्व पर गर्व हुआ और बोल उठे कि हम तो ब्राह्मण हैं जी! हम प्याज-लहसुन नहीं खाते! गनीमत कि किसी ने यह न कहा कि जिसे प्याज खानी हो, पाकिस्तान चला जाए!

संसद में प्याज पर बहस है। वित्तमंत्री जी कहती हैं कि मैं जिस परिवार से आती हूं उसमें प्याज-लहसुन का कोई मतलब नहीं है।...

इस एक घमंडी किस्म के वाक्य ने चैनलों में तूफान खड़ा कर दिया है। चैनल लाइन मारने लगते हैं : यह 'एलीटिज्म' है। दूसरे चैनल ने इसे 'मेरी अंतोनियत का क्षण' बताया (मेरी ने फ्रांसीसी क्रांति से पहले, अकाल की मारी फ्रांसीसी जनता को कहा था कि 'जनता के पास रोटी नहीं तो केक खाए')! यही नहीं, तिहाड़ से कल ही बाहर आए चिंदबरम भी इस पर एलीटिज्म पर एलीटिस्टी चुटकी लेते हुए कह उठे कि शायद वे 'एवोकाडो' (एक अनोखी वनस्पति) खाती हों!

लेकिन इस प्याज-पीड़ित सीजन में पूर्व पीएम मनमोहन सिंह ने पूर्व-पीएम गुजराल को याद करते हुए कह दिया कि अगर 1984 में गृहमंत्री नरसिंह राव ने गुजराल की यह सलाह मान ली होती कि कानून-व्यवस्था के लिए सेना को लगाओ, तो वे 'मेसेकर' (जनसंहार) न हुआ होता!

इसके बाद तो कई एंकरों की बन आई। जो प्याज पर सरकार पर विफर रहे थे, वे अब मनमोहन सिंह से लेकर राजीव गांधी, सबको ठोकने लगे! एक एंकर ने गुजराल के पुत्र को जुटाया, जिनने कहा कि मनमोहन सिंह ने सच कहा, तो अकाली बोले कि सब राजीव गांधी को बचाने के लिए किया, लेकिन किसी को लगा कि राजीव को ठुकवाने के लिए किया! एक चैनल पर नरसिंह राव के बेटे ने कहा कि ये राजीव गांधी को बचाने की कोशिश है। तब पीएम तो राजीव ही थे। आश्चर्य कि गुजराल ने राव से कहा, राजीव से नहीं कहा? क्यों? एक एंकर ने वितर्क किया कि गुजराल तो राजीव के बेहद करीबी थे, उनने उनसे न कह कर राव से कहा, यह समझ से परे है। राव का क्या कसूर! पीएम तो राजीव ही थे, तब जिम्मेदार तो वही हुए!

हा हतभाग कांग्रेस! जिस दिन प्याज पर भाजपा संसद में पिट रही थी, मनमोहन की इस टिप्पण के बाद उस शाम कांग्रेस चैनलों में खूब पिटी! एक ट्रक-छाप शायर ने कितना सच कहा है कि :

'डुबोया मुझको अपनों ने गैरों में कहां दम था
मेरी कश्ती वहीं डूबी जहां पानी कम था!'

इसे कहते हैं 'पोस्ट-ट्रुथ'! ऐसे 'उत्तर सत्यवादी हरिश्चंद्र' हैं हमारे पूर्व पीएम!

बहरहाल, जिस समय मालीवाल राजघाट पर नए और कड़े रेप विरोधी कानून बनवाने के लिए अनशन पर बैठी रहीं और खबरों से लगभग बाहर होने लगीं, तभी उन्नाव की एक रेप-जीविता को दो लोगों ने आग लगा दी! हैदराबाद की रेप-हत्या की नृशंस कहानी पूरी नहीं हुई थी कि उन्नाव ने एक और निष्करुण कहानी चैनलों को दे दी। यहां भी एक आला पुलिस अधिकारी ने फरमाया कि पीड़िता को आग लगाने वाले से प्रेम संबंध थे, लेकिन उसने शादी करने से मना कर दिया, तब पीड़िता ने रेप का आरोप लगाया। इसे कहते हैं 'पोस्ट-ट्रुथ' का निर्माण! केस रहा रेप जीविता को आग लगा कर मार देने का और बनाई जाने लगी 'पोस्ट-ट्रुथीय' प्रेम कहानी! धिक्कार है!

लेकिन शुक्रवार की सुबह, हैदराबाद की डॉक्टर के रेप और हत्या के बरक्स 'तुरंता न्याय' की सबसे मौलिक कहानी वहां की पुलिस ने बनाई। उसने बताया कि हम अपराध की जगह जाकर 'अपराध के सीन' की पुनर्रचना कर रहे थे कि एक अपराधी रिवाल्वर छीन कर भागा, तो जवाबी फायर में चारों मारे गए! एक चैनल का रिपोर्टर कुछ इस तरह से बताता रहा मानो 'एनकाउंटर' के वक्त वह वहीं मौजूद रहा हो! इस 'एनकाउंटर' की खबर देखते-देखते हर चैनल पर छा गई। देर तक कई एंकर इसे 'जो हुआ सो सही हुआ' के भाव से बताते रहे! कानून मंत्री बोले कि भगवान ने 'न्याय' किया! लोग पुलिस की जयकार करने लगे। उस पर फूल बरसाने लगे! यह कैसा एनकाउंटर था कि मुग्ध होकर जनता फूल बरसाने लगी?

'सिंघम छाप' इस 'तुरंता न्याय' का जादू चैनलों में ऐसा चला कि न्याय की भाषा फिल्मी हो गई। मायावती बोलीं कि यूपी पुलिस को वहां की पुलिस से प्रेरणा लेनी चाहिए। निर्भया की मां ने कहा कि पुलिस ने नजीर बनाई! रजा मुराद, ऋषि कपूर सबकी यही राय रही! कई एंकर भी पुष्पवर्षकों की तरह ही बोलते रहे।

कई एंकर रिपोर्टर इस कदर 'तुरंता न्यायवादी' हुए कि उनके लिए जांच, प्रमाण, कानून, बहस, अदालत और फैसला आदि सब बेकार हो गए! सिर्फ सीपीएम ने दो टूक कहा कि यह 'एक्स्ट्रा जुडिशियल किलिंग्स' है। तहसीन पूनावाला ने भी कहा कि ऐसी बातों से न्याय प्रक्रिया पर भरोसा कमजोर होता है! जस्टिस सोधी ने पूछा कि जब वे पुलिस 'कस्टडी' में थे 'एनकांउटर' कैसे संभव है?

जब अपने नामी सांसद संसद में ऐसे अपराधियों को 'लिंच करो', चौराहे पर 'लटका दो' की मांग करेंगे और अपने चैनल बिना आलोचना के उनको दिन-रात बजाएंगे, तो फिर कानून क्या करेगा? तब तो इसी तरह के 'सिंघम न्याय' की जयकार होगी!

बाखबर

■ सुधीश पचौरी

जब अपने नामी सांसद संसद में ऐसे अपराधियों को 'लिंच करो', चौराहे पर 'लटका दो' की मांग करेंगे और अपने चैनल बिना आलोचना के उनको दिन-रात बजाएंगे, तो फिर कानून क्या करेगा? तब तो इसी तरह के 'सिंघम न्याय' की जयकार होगी!

www.readwhere.com